पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री नियमसार गाथा ७७-८१
ता. ०८-०२-१९८९, प्रवचन नंबर ४२५

आज का अपूर्व मांगलिक दिन है। २२वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान के तप कल्याणक, दीक्षा कल्याणक का दिवस है। .... हो! उसकी योग्यता हो (और) आत्मज्ञानी गुरु की देशनालब्धि मिले अथवा जिनवाणी निमित्त हो, तब इसको गृहस्थ अवस्था में आत्मा का अनुभव होता है। इस गृहस्थ अवस्था में अनुभव होने पर ही, उस जीव को, उस साधक आत्मा को, चारित्र की भावना प्रगट होती है क्योंकि, चारित्र बिना मोक्ष नहीं (होता)। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र नहीं है और चारित्र बिना मोक्ष नहीं। चारित्र अर्थात् **स्वरूपे चरणं चारित्रं (प्रवचनसार गाथा ७ 'तत्त्वप्रदीपिका' टीका)**। उपयोग को ज्ञायक में जोड़कर के उसमें एकाग्र (होना), ध्यान में लीन होना, उसे परमात्मा चारित्रदशा कहते हैं। वह वीतरागी अपूर्व दशा है, वह कोई साधारण वस्तु नहीं है। चारित्र, सम्यग्दृष्टि को ही आता है उसके कालक्रम में, बाद में कहने में आता है कि उसने पुरुषार्थ से चारित्र अंगीकार किया। हिन्दी में, अच्छा! हिन्दी में चलाऊँ। अच्छा याद दिलाया।

प्रत्येक जीव को वर्तमान में एक ज्ञान उपयोग प्रगट होता है, प्रत्येक जीव को। उस उपयोग में, सामान्य उपयोग में ज्ञायकभाव जानने में आता है। जानने में आता है, आ रहा है, आ रहा है। ऐसा जो कोई ज्ञानी का वचन कान पर पड़ता है, तो ये उपयोग अंदर में चला जाता है, तो उपयोग का नाम शुद्धोपयोग हो जाता है। और शुद्धोपयोग में शुद्धात्मा का दर्शन हो जाता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान परिणाम है, वीतरागी परिणाम।

तो अपने नेमिनाथ भगवान की आज दीक्षा (है)। वो तो स्वर्ग में से आये, पधारे, तो तीन ज्ञान लेकर आये थे - मति, श्रुत और अवधिज्ञान। आज मनःपर्यायज्ञान उत्पन्न हो गया, भगवान को, आज के दिन, दीक्षा है ना आज। आहाहा! वे स्वयंभू थे, उनका कोई गुरु नहीं होता, तीर्थंकर का कोई गुरु नहीं होता है। आहाहा! स्वयं ही तीनलोक के नाथ गुरु हैं, गुरु तत्त्व हैं वो। आहाहा! ऐसे गृहस्थ अवस्था में प्रथम चारित्र की भावना भाते हैं। ये चारित्र की भावना सम्यग्दृष्टि कैसे भाता है, वो ये अपूर्व अवसर, चंदुभाई आप को सुनायेंगे।

अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जब?
सर्व सम्बन्धों का बंधन तीक्ष्ण छेदकर,
विचरूँगा कब महत्पुरुष के पंथ जब? ॥१॥
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?

बहु उपसर्गकर्ता के प्रति भी क्रोध नहीं,
वन्दे चक्री तथापि मान न होय जब;
देह जाय पर माया नहीं हो रोम में,
लोभ नहीं हो प्रबल सिद्धि निदान जब ॥८॥
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा ?

शत्रु-मित्र के प्रति वर्तें समदर्शिता,
मान-अमान में वर्ते वही स्वभाव जब,
जीवन या मृत्यु में हो नहीं न्यूनाधिकता,
भव मोक्ष में भी शुद्ध वर्ते समभाव जब ॥१०॥
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?

एकाकी विचरते कभी श्मशान में,
कभी पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब;
अडोल आसन और मन में नहीं क्षोभ हो,
परम मित्र का मानो पाया योग हो ॥११॥
अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?

मुनिराज, सिद्ध दशा (तो) कोई अलौकिक होती है। भावलिंगी संत (को) दीक्षा लेने के साथ शुद्धोपयोगदशा, निर्विकल्पध्यान आकर सप्तम गुणस्थान आता है। चतुर्थ गुणस्थान में आनंद का भोजन तो था, आनंद का भोजन तो था (परंतु) थोड़ा था, आनंद का भोजन कम था। मुनि अवस्था में आनंद बढ़ गया, तीन कषाय के अभाव (पूर्वक) वीतरागदशा बढ़ गई तो वीतरागभाव के फल में अतीन्द्रिय आनंद की दशा कोई और होती है। नित्य आनंद भोजी! संत आनंद का भोजन करते हैं। रागानुभूति नहीं है, आनंदानुभूति है उनको। राग को जानते हैं मगर राग का अनुभव नहीं है।

साधक को नहीं है? कि नहीं है। सुन ज़रा शांति से। आहाहा! उसके साथ एकत्वबुद्धि होती नहीं है! इसलिए वो जानते हैं मगर दुख के भोक्ता नहीं हैं। आहाहा! दुख को जानें (परंतु) दुख को भोगें नहीं। आनंद को भोगते हैं वो भी अपेक्षित (कथन) है। ऐसे नित्यानंद परमात्मा के सन्मुख जाकर शुद्धोपयोगदशा में निरंतर छठवें, सातवें गुणस्थान, प्रमत्त-अप्रमत्त दशा में झूलनेवाले महामुनि, चलते-फिरते सिद्ध दशा है उनकी। आहाहा!

ऐसे अपने उपकारी कुंदकुंदाचार्य भगवान जब छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते थे, इस भरतक्षेत्र में, तब उन्होंने एक नियमसार शास्त्र बनाया, (वह) अपनी भावना के लिए बनाया। समयसार तो अप्रतिबुद्ध के लिए लिखा, मगर नियमसार शास्त्र तो अपनी भावना के लिए (बनाया)। भावना का अर्थ क्या है? शब्द का नाम भावना नहीं है, विकल्प का नाम भावना नहीं है, इंद्रियज्ञान का नाम भावना नहीं है। भावना यानि भाव की भावना, भाव यानि परमपरिणामिक-स्वभावभाव की एकाग्रता - ध्यान। (परमपरिणामिक भाव) में लीन होकर जो भावना होती है, उस भावना से केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। भावना से क्या होता है? केवलज्ञान प्रगट होता है। तो ऐसे नियमसार शास्त्र में परमार्थ प्रतिक्रमण का

एक अधिकार है।

कार्यकर्ता ने कहा कि समय बहुत हो गया (है), इसलिए १५ मिनट रखना। समझे? १५ मिनट तो बहुत है, बहुत है, बहुत है, घंटे-दो घंटे की ज़रुरत नहीं है, बिजली के चमकने तक मोती पिरो दो, बस, इतनी बात है! हमारे चंदूभाई भिमाणी साहब (पूछते हैं), इतना सरल है? कि (हाँ!) इतना ही सरल है। जो दृष्टि बहिर्मुख होती है, वो दृष्टि अंतर्मुख आते ही आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। इधर बैठकर, बैठे-बैठे अनुभव हो जाता है, नहीं होता है - ऐसा नहीं है। मंदिर में जाने की ज़रूरत नहीं है! अर्थात् मंदिर में नहीं जाना? नहीं जाने-जाने की बात नहीं है, तू आत्मा में बैठ जा। है तो तू आत्मा में ही। आहाहा! बाहर निकला नहीं है।

ऐसे परमार्थ प्रतिक्रमण का अधिकार, चारित्र का अधिकार है। बात थोड़ी सूक्ष्म है, सूक्ष्म का अर्थ नहीं समझेगा - ऐसा अर्थ नहीं, सूक्ष्म का अर्थ क्या है? कि उपयोग (को) बराबर सूक्ष्म बनाओ, तो ख्याल में आ जाए।

इसकी टीका है, पाँच रतन हैं, सारा नियमसार शास्त्र परमागम शास्त्र है, कुंदकुंदाचार्य भगवान का। उसके टीकाकार (पद्मप्रभमलधारी देव) भावी तीर्थंकर लिखकर गये हैं, हो! अपने-आप, २१२ श्लोक में। आहाहा! ये उनकी टीका है।

तो सारे नियमसार शास्त्र में, शुद्धभाव अधिकार (में) दृष्टि का विषय बहुत ऊँचा आ गया है, मगर उसका नाम कहीं पाँच रतन नहीं लिखा। पाँच रतन लिखने का भाव इन पाँच गाथा में आया है - ७७ से ८१।

तो इन पाँच गाथाओं के अंदर शीर्षक-मथाला, टीकाकार आचार्य भगवान बाँधते (लिखते) हैं शीर्षक। शीर्षक में सब माल है। संक्षेप रुचिवाल तो एक लाइन में समझ जाये। विस्तार रुचिवाले के लिए ये सारी टीका है। अब एक लाइन में टीकाकार आचार्य महाराज क्या लिखते हैं? कुंदकुंद भगवान का हृदय उन्होंने - टीकाकार ने परख लिया है। क्योंकि समकक्षी हैं दोनों मुनिराज, भावलिंगी संत था। आहाहा!

देखो भैया! इस आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। जानना-देखना आत्मा का स्वभाव है, वहाँ से तो शुरुआत होती है। करने से शुरुआत होती नहीं है। आहाहा! वसंतभाई। इस आत्मा का स्वभाव ज्ञानमयी है, जानना-देखना मेरा काम है। आहाहा! तो आचार्य भगवान पहली पंक्ति में लिखते हैं। **यहाँ शुद्ध आत्माको** यानि इधर, इस गाथा में, शुद्धात्मा के विषय **सकल कर्तृत्वका अभाव दर्शाते हैं।** आहाहा!

सकल कर्तृत्व का अभाव यानि परद्रव्य का कर्ता तो है ही नहीं, परंतु अपने भीतर जो परिणाम उत्पन्न होता है, स्वाश्रित हो या पराश्रित परिणाम, उसका कर्ता आत्मा नहीं है। तो इस चारित्र के अधिकार में कर्ता नहीं है, ऐसा क्यों याद किया? क्योंकि कर्ताबुद्धि तो चतुर्थ गुणस्थान में चली गई थी, ये तो छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान चलता है। प्रभु! आप ये क्या लिखते हैं? आपकी कर्ताबुद्धि तो पहले ही निकल गई है। फिर से आत्मा कर्ता नहीं, कारयिता नहीं, अनुमोदक नहीं और कारण नहीं, ये क्या बात है? उसमें क्या रहस्य है? उसमें भारी रहस्य है - कर्ताबुद्धि जाने से सम्यग्दर्शन होता है और कर्ता

का उपचार चले जाने से शुक्लध्यान की श्रेणी आ जाती है - दो बातें हैं।

फिर से! मैं कर्ता हूँ और रागादि मेरा कार्य है, और परपदार्थ का परिणाम होता है उसमें मैं निमित्त हूँ - ऐसी बुद्धि (वो) मिथ्याबुद्धि है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि का लक्षण क्या है? (वो) उसकी वाणी से पहचाना जाता है। आहाहा! ज्यादा परीक्षा करने की ज़रुरत नहीं है। उसका वजन कहाँ आता है? इतना तो करना चाहिए! कुछ तो करना चाहिए! उसकी शुरुआत करने से होती है। जो घूँटाता है ना, वो वाणी में आ जाता है। जानना, जानना, जानना, जानने से शुरूआत नहीं होती है (उसकी)। आहाहा! जिसकी शुरुआत जानने से होती है, भले जाननहार को प्राप्त नहीं किया हो तो भी, ज्ञाता के पक्ष में आने के बाद वो प्रत्यक्ष ज्ञाता हो जाता है। कर्ता के पक्षवाला चार गति में रुलता है। आहाहा!

तो पहले (तो) मैं कर्ता नहीं हूँ; परिणाममात्र से मेरा आत्मा भिन्न है। आत्मा से परिणाम भिन्न है, और परिणाम से मैं भिन्न - ऐसे परस्पर भिन्नता ख्याल में आने से परिणाम की कर्ताबुद्धि छूट जाती है। परिणाम रह जाता है और परिणाम की कर्ताबुद्धि छूट जाती है। ये ख्याल रखना! आहाहा! पुण्य से धर्म नहीं होता है, इसका अर्थ पुण्य छोड़ने की बात नहीं है। पुण्य से धर्म मानना छोड़ दे! रहस्य है!

भोपाल में ३० हजार लोग थे, भोपाल में। और ज़रा (गुरुदेव के) शरीर को बुखार आ गया। आत्मा को (तो बुखार) आता नहीं है। गुरुदेव की बात (है)। तो कहा कि भाई! पुण्य छोड़कर पाप का उपदेश देने की बात तो जैनदर्शन में नहीं है। अन्यमति में नहीं है तो जैनदर्शन में कहाँ से हो! तो क्या बात है? कि पुण्य से धर्म होता है - ऐसी मिथ्या मान्यता छोड़ दे! आहाहा! ताली की गड़गड़ाहट हो गई क्योंकि ज्ञानी की बात समझने में भूल होती है - पुण्य हेय है, पुण्य हेय है यानि पुण्य से धर्म नहीं होता है - ऐसा तू समझ ले! पुण्य छोड़ने की बात कौन (करता है)? पुण्य (को तो) करता नहीं है तो छोड़े कौन और करे कौन? और (पुण्य को) जानना वो भी सविकल्पदशा तक है, बाकी (बाद में) तो (पुण्य को) जानना भी बंद हो जाता है। आहाहा!

तो कर्ताबुद्धि छूट जाती है। कर्ताबुद्धि छूटने से चौथे, पाँचवे, छठवें गुणस्थान तक तो आता है, सातवें से छठवें, छठवें से सातवें। कर्ताबुद्धि तो छूट गई मगर कर्ता का उपचार रह जाता है। क्या कहा? कि निश्चय रत्नत्रय के परिणाम का आत्मा उपचारमात्र से कर्ता है। कर्ताबुद्धि नहीं (है)। आहाहा! कर्ताबुद्धि में फर्क है और कर्ता के उपचार में फर्क है।

समर्थ आचार्य भगवान ने इधर क्यों लिखा कि कर्ता नहीं हूँ? आहाहा! विचार करने जैसी बात है। कर्ताबुद्धि तो चली गई थी, फिर से कर्ता नहीं हूँ (ऐसा क्यों लिखा)? कर्ता नहीं हूँ यानि मेरा परिणमन निश्चय रत्नत्रयरूप परिणमता है तो (जो) परिणमे सो कर्ता और परिणाम सो कर्म - ऐसे वीतरागी परिणाम की ओर ये कर्तापने का उपचार आता था, वो उपचार खटकता है, वो उपचार खटकता है। आहाहा! उपचाररूप व्यवहार, उपचाररूप व्यवहार। उपचार कहो कि व्यवहार (कहो), (वो) खटकता था। आहाहा! साधक निश्चय रत्नत्रय के परिणाम का कर्ता उपचारमात्र से है। कुंदकुंदाचार्य भगवान को वो खटका। आहाहा! श्रेणी नहीं आती है। कर्ताबुद्धि होती है तो सम्यग्दर्शन नहीं होता है; और कर्ता का उपचार आता है, तब तक श्रेणी नहीं आती है, केवलज्ञान नहीं होता है। आहाहा!

मुमुक्षु: फिर से।

पू. लालचंदभाई: (हाँ) फिर से। मैं रागादि (का) या परपदार्थ का कर्ता हूँ, देहादि का, देह का, संग का, समझे? यह व्यवस्था मैं करता हूँ - वो तो मिथ्याबुद्धि है! उसमें तो कुछ माल है नहीं। आहाहा! वो तो सम्यक् के सन्मुख भी नहीं है, उसकी बात तो गई। आहाहा! राग होने पर भी मैं राग का कर्ता नहीं हूँ, मैं तो ज्ञानमयी आत्मा हूँ।

एक बार आत्मधर्म (गुजराती अंक ४८७, मई १९८४) आया, तीन-चार साल पहले की बात है, उसमें १५४ बोल आये, उसमें गुरुदेव का चौथा बोल है। तो उसमें लिखा कि, जैसे सिद्ध परमात्मा का स्वभाव जानना-देखना है, ऐसे तेरा भी स्वभाव जानना-देखना है। Same (वैसा ही), कॉपी टू कॉपी, सेंट परसेंट (शत् प्रतिशत)। आहाहा! 'कथंचित् कर्ता और कथंचित् जानना' रहने दे - कथंचित् की आड़ में सम्यग्दृष्टि नहीं होता है। कथंचित् की बात बाद में कर, अनुभव के बाद में कथंचित् स्याद्वाद, वो सब उत्पन्न होगा। अभी थोड़ी देर के लिए तो इधर (जानने में) आजा।

जिस तरह सिद्ध परमात्मा... गुजराती में थोड़ा कहना पड़े। जैसे सिद्ध परमात्मा जाननहार-देखनहार हैं, वैसे तू भी....अपने को कहा अर्थात् (मैं भी)। किसको कहा ये? हम हाज़िर थे सभी। हम हाज़िर थे कि नहीं? सभी हाज़िर थे। अपने को फ़रमाया। आहाहा! करुणा आ गई उनको कि इसमें, संक्षेप से मैं कहूँ तो बहुत समझ जाएँगे। सिद्ध भगवान जैसे जाननहार-देखनहार हैं, सिद्ध परमात्मा - अपने सिर (के) ऊपर समश्रेणी से विराजमान हैं, हो! अभी। आहाहा! जिस प्रकार **सिद्ध** परमात्मा **जाननहार-देखनहार हैं, उसी प्रकार तुम भी जाननहार-देखनहार ही हो।** कब? कि तीनों काल! आहाहा! तेरा स्वभाव जानना-देखना है। राग का करना तेरा स्वभाव नहीं है। 'राग का मैं कर्ता हूँ' तो ज्ञान नहीं रहता है, ज्ञान का अज्ञान हो जाता है! तो भी राग का कर्ता तो बनता नहीं है, विशेष अपेक्षा से कर्ता है, बाकी अकर्ता तो रह जाता है, अकर्ता छूटता नहीं है। आहाहा!

सामान्य पहलू जो अकर्ता का है, ज्ञायक का पहलू, ज्ञाता का पहलू, (वो) तीनकाल में छूटता नहीं है। आहाहा! ऐसे सामान्य पहलू पर दृष्टि जब जाएगी तब शुद्धोपयोग होता है, तब कर्ताबुद्धि छूट जाती है, सम्यग्दर्शन हो जाता है; मगर चारित्र अंगीकार करने के बाद (भी) श्रेणी नहीं आती (है)।

और नेमिनाथ भगवान ने तो आज ५५ दिन तक....आज ५५वां दिन है, कल ५६वां दिन आएगा। ५६वां दिन कल, केवलज्ञान कल होनेवाला है ना। आहाहा! ५५ दिन तक क्या किया? गिरनार में जाकर ध्यान में मग्न हो गये - आत्मध्यान। निमित्त का ध्यान तो इस जीव ने अनंतबार किया। राग का ध्यान किया, परपदार्थ का ध्यान किया, भेद का ध्यान किया और भेद की भावना भी भायी। क्या कहा?

फिर से। भेद का ध्यान भी किया और भेद की भावना भी रखी मगर अभेद का ध्यान एक समय मात्र नहीं किया। आहाहा! ये चिदानंद आत्मा प्रभु अन्दर (में) विराजमान है। देह में होने पर भी देह से भिन्न, आठ कर्म से भी भिन्न, रागादि आस्रव तत्त्व से भी अभी भिन्न (है) और राग को जाननेवाले इन्द्रियज्ञान से भी अभी भिन्न है। वो तो अतीन्द्रियज्ञानमयी भगवान आत्मा विराजमान है अंदर। आहाहा! तो ये (कुंदकुंद प्रभु को) अंदर में थोड़ी खटक आई, कि निर्विकल्पध्यान तो आता है मगर धर्मध्यान होता है, शुक्लध्यान क्यों नहीं आता है? छठवें गुणस्थान में परिणतीरूप धर्मध्यान है। सप्तम

गुणस्थान में निर्विकल्प शुद्धोपयोगरूप धर्मध्यान है। मगर छठवें-सातवें गुणस्थान में... सातवें गुणस्थान का 'स्वस्थान' में धर्मध्यान होता है, (परंतु) ऊपर (सातिशय में) नहीं जाता है। तो ख्याल में आया कि उपचार से कर्ता है, वो व्यवहार है। उपचार से कर्ता कहना व्यवहार है, ज्ञान में आ गया। उपचार से, व्यवहार से, मैं ज्ञान का कर्ता नहीं हूँ, तो ज्ञायक पर दृष्टि आ जाती है। निर्विकल्पध्यान में आकर ५५ दिन तक ध्यान किया और ५६ वाँ दिन कल आयेगा और शुक्लध्यान श्रेणी आनेवाली है और कल केवलज्ञान का दर्शन होगा।

ॐ